बौद्ध-पिटकों तथा जैन-ग्रन्थों को पढ़नेवाला सामान्य अभ्यासी केवल यही जान पाता है कि निर्ग्रन्थ-परंपरा ही तप को निर्जरा का साधन माननेवाली है परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। जब हम सांख्य-योग-परंपरा को देखते हैं तब मालूम पड़ता है कि योग-परंपरा भी निर्जरा के साधन रूप से तप पर उतना ही भार देती आई है जितना भार निर्ग्रन्थ-परंपरा उस पर देती है। यही कारण है कि उपलब्ध योग-सूत्र के रचयिता पतंजलि ने अन्य साधनों के साथ तप को भी क्रिया-योग रूप से गिनाया है (२-१) इतना ही नहीं बल्कि पतञ्जलि ने क्रिया-योग में तप को ही प्रथम स्थान दिया है।

इस सूत्र का भाष्य करते हुए व्यास ने सांख्य-योग्य-परंपरा का पूरा अभिप्राय प्रगट कर दिया है। व्यास कहते हैं कि जो योगी तपस्वी नहीं होता वह पुरानी चित्र-विचित्र कर्म-वासानाओं के जाल को तोड़ नहीं सकता। व्यास का पुरानी वासनाओं के भेदक रूप से तप का वर्णन और निग्रंथ-परंपरा का पुराण कर्मों की निर्जरा के साधन रूप से तप का निरूपण-ये दोनों श्रमण-परंपरा की तप संबन्धी प्राचीनतम मान्यता का वास्तविक स्वरूप प्रगट करते हैं। बुद्ध को छोड़कर सभी श्रमण-परंपराओं ने तप का अति महत्त्व स्वीकार किया है। इससे हम यह भी समझ सकते हैं कि ये परंपराएँ श्रमण क्यों कहलाईं? मूलक में श्रमण का अर्थ ही तप करनेवाला है। जर्मन विद्वान् विन्टरनित्स् ठीक कहता है कि श्रामणिक-साहित्य वैदिक-साहित्य से भी पुराना है जो जुदे-जुदे रूपों में महाभारत, जैनागम तथा बौद्ध-पिटकों में सुरक्षित है। मेरा निजी विचार है कि सांख्य-योग-परंपरा अपने विशाल तथा मूल अर्थ में सभी श्रमण-शाखाओं का संग्रह कर लेती है। श्रमण-परंपरा के तप का भारतीय-जीवन पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा है कि वह किसी भी प्रान्त में, किसी भी जाति में और किसी भी फिरके में सरलता से देखा जा सकता है। यही कारण है कि बुद्ध तप का प्रतिवाद करते हुए भी 'तप' शब्द को छोड़ न सके। उन्होंने केवल उस शब्द का अर्थ भर अपने अभिप्रायानुकूल किया है।

(६)

लेश्या-विचार

वैदिक-परंपरा में चार वर्णों की मान्यता धीरे-धीरे जन्म के आधार पर स्थिर हो गई थी। जब वह मान्यता इतनी सख्त हो गई कि आन्तरिक योग्यता रखता हुआ भी एक वर्ण का व्यक्ति अन्य वर्ण में या अन्य वर्णयोग्य धर्मकार्य में प्रविष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो नहीं सकता था। तब जन्मसिद्ध चार वर्णों की मान्यता के विरुद्ध गुणकर्मसिद्ध चार वर्ण की मान्यता का उपदेश व प्रचार श्रमण वर्ग ने बड़े जोरों से किया, यह बात इतिहास-प्रसिद्ध है।

बुद्ध और महावीर दोनों कहते हैं कि जन्म से न कोई ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न वैश्य है, न शूद्र है। ब्राह्मणादि चारों कर्म से ही माने जाने चाहिए इत्यादि [1]। श्रमण-धर्म के पुरस्कर्ताओं ने ब्राह्मण-परंपरा प्रचलित चतुर्विध वर्ण-विभाग को गुण-कर्म के आधार पर स्थापित तो किया पर वे इतने मात्र से संतुष्ट न हुए। अच्छे-बुरे गुण-कर्म की भी अनेक कक्षाएँ होती हैं। इसलिए तदनुसार भी मनुष्य जाति का वर्गीकरण करना आवश्यक हो जाता है। श्रमण-परंपरा के नायकों ने कभी ऐसा वर्गीकरण किया भी है। पहले किसने किया सो तो मालूम नहीं पड़ता पर बौद्ध-ग्रन्थों में दो नामों के साथ ऐसे वर्गीकरण की चर्चा आती है। 'दीघ-निकाय' में आजीवक मंखलि गोशालक के नाम के साथ ऐसे वर्गीकरण को छः अभिजाति रूप से निर्दिष्ट किया है, जब कि अंगुत्तर निकाय में पुरणकस्सप के मन्तव्य रूप से ऐसे वर्गीकरण का छः अभिजाति रूप से कथन है [2]। ये छः अभिजातियां अथवा मनुष्यजाति के कर्मानुसार कक्षाएँ इस प्रकार हैं—कृष्ण, नील, लोहित-रक्त, हरिद्र-पीत, शुक्ल, परम शुक्ल। इन छः प्रकारों में सारी मनुष्यजाति का अच्छे-बुरे कर्म की तीव्रता-मन्दता के अनुसार समावेश कर दिया है।

आजीवक परंपरा और पुरणकस्सप की परंपरा के नाम से उपर्युक्त छः अभिजातियों का निर्देश तो बौद्ध-ग्रन्थ में आता है पर उस विषयक निर्ग्रन्थ-परंपरा संबन्धी मन्तव्य का कोई निर्देश बौद्ध-ग्रन्थ में नहीं है जब कि पुराने से पुराने जैन ग्रन्थों में [3] निर्ग्रन्थ-परंपरा का मन्तव्य सुरक्षित है। निर्ग्रन्थ-परंपरा छः अभिजातियों को लेश्या शब्द से व्यवहृत करती आई है। वह कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल ऐसी छः लेश्याओं को मान कर उनमें केवल मनुष्यजाति का ही नहीं बल्कि समग्र प्राणी जाति का गुण-कर्मानुसार समावेश करती है। लेश्या का अर्थ है विचार, अध्यवसाय व परिणाम। क्रूर और क्रूरतम विचार कृष्ण लेश्या है और शुभ और शुभतर विचार शुक्ल लेश्या है। बीच की लेश्याएँ विचारगत अशुभता और शुभता का विविध मिश्रण मात्र है।

---

१. उत्तराध्ययन २५. ३३। धम्मपद २६. ११। सुत्तनिपात ७. २१

२. अंगुत्तर निकाय vol. III p.383

३. भगवती १. २. २३। उत्तराध्ययन अ० ३४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुद्ध ने पुरणकस्सप की छः अभिजातियों का वर्णन आनन्द से सुनकर कहा है कि मैं छः अभिजातियों को तो मानता हूँ पर मेरा मन्तव्य दूसरों से जुदा है। ऐसा कह करके उन्होंने कृष्ण और शुक्ल ऐसे दो भेदों में मनुष्यजाति को विभाजित किया है। कृष्ण अर्थात् नीच, दरिद्र, दुर्भग और शुक्ल अर्थात् उच्च, समृद्ध, सुभग। और पीछे कृष्ण प्रकार वाले मनुष्यों को तथा शुक्ल प्रकार वाले मनुष्यों को तीन-तीन विभागों में कर्मानुसार बांटा है। उन्होंने कहा है कि रंग-वर्ण कृष्ण हो या शुक्ल दोनों में अच्छे-बुरे गुण-कर्म वाले पाए जाते हैं। जो बिलकुल क्रूर हैं वे कृष्ण हैं, जो अच्छे कर्म वाले हैं वे शुक्ल हैं और जो अच्छे-बुरे से परे हैं वे अशुक्ल-अकृष्ण हैं। बुद्ध ने अच्छे-बुरे कर्मानुसार छः प्रकार तो मान लिए पर उनकी व्याख्या कुछ पुरानी परंपरा से अलग की है जैसी कि योगशास्त्र में पाई जाती है। जैन-ग्रन्थों में ऊपर वर्णित छः लेश्याओं का वर्णन तो है ही जो कि आजीवक और पुरणकस्सप के मन्तव्यों के साथ विशेष साम्य रखता है पर साथ ही बुद्ध के वर्गीकरण से या योग-शास्त्र के वर्गीकरण से मिलता-जुलता दूसरा वर्गीकरण भी जैन-ग्रन्थों में आता है।[1]

उपर्युक्त चर्चा के ऊपर से हम निश्चयपूर्वक इस नतीजे पर नहीं आ सकते कि लेश्याओं का मंतव्य निर्ग्रन्थ-परंपरा में बहुत पुराना होगा। पर केवल जैन-ग्रन्थों के आधार पर विचार करें और उनमें आनेवाली द्रव्य तथा भाव लेश्या की अनेक विधि प्ररूपणाओं को देखें तो हमें यह मानने के लिए बाधित होना पड़ता है कि भले ही एक या दूसरे कारण से निर्ग्रन्थ-सम्मत लेश्याओं का वर्गीकरण बौद्ध-ग्रन्थों में आया न हो पर निर्ग्रन्थ-परंपरा आजीवक और पुरणकस्सप की तरह अपने ढंग से गुण कर्मानुसार छः प्रकार का वर्गीकरण मानती थी। यह सम्भव है कि निर्ग्रन्थ-परम्परा की पुरानी लेश्या विषयक मान्यता का अगले निर्ग्रन्थों ने विशेष विकास व स्पष्टीकरण किया हो और मूल में गुण-कर्म रूप लेश्या जो भाव लेश्या कही जाती है उसका संबन्ध द्रव्यलेश्या के साथ पीछे से जोड़ा गया हो; जैसा कि भाव-कर्म का संबन्ध द्रव्यकर्म के साथ जोड़ा जाता है। और यह भी सम्भव है कि आजीवक आदि अन्य पुरानी श्रमण-परंपराओं की छः अभिजाति विषयक मान्यता को महावीर ने या अन्य निर्ग्रन्थों ने अपना कर लेश्यारूप से प्रतिपादित किया हो और उसका कुछ परिवर्तन और उसका कुछ शाब्दिक परिवर्तन एवं अर्थ विकास भी किया हो।

---

१. भगवती २६. १. । योगशास्त्र ४. ७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org